क्या गाँधी और *हिंद स्वराज* की उनकी कल्पना को उनके लेखन की घड़ी से अलग किया जा सकता है?

वे आने वाली आधुनिकता से पहले के क्षण में *हिंद स्वराज* का ढाँचा बनाते हैं। यह एक ऐसा पल है जहाँ समाज और व्यक्ति ने दहलीज पार नहीं की थी। यदि केवल परम्परागत या रूढ़ि परायण समाज की चर्चा होती तो भला *हिंद स्वराज* की ज़रूरत ही क्या थी?

हिंद स्वराज में अस्ताचल की ओर बढ़ रही, सीमित बन रही सम्भावनाओं का दर्शन है। इसकी प्रवाहमयता हमें व्यग्र करती है और इसी कारण बार-बार उससे जूझने का न्योता देती है।

हिंद स्वराज : गोधूलि वेला में परम्परा और आधुनिकता

त्रिदीप सुहृद

परिप्रेक्ष्य

गाँधी की रचना *हिंद स्वराज* 1909 में लिखी गयी। 1909 यानी बीसवीं सदी का पहला दशक। *हिंद स्वराज* न तो उन्नीसवीं शताब्दी में लिखा गया, और न ही बीसवीं शताब्दी के अंत में। बीसवीं सदी के अंत में हमने एक बार फिर से *हिंद स्वराज* के महत्त्व और इसकी सम्भावना पर नये सिरे से विचार करना शुरू किया। हम *हिंद स्वराज* का दार्शनिक महत्त्व समझने लगे। इसी के साथ *हिंद स्वराज* भी हमारे समय में, हमारी समकालीनता में आने के लिए तत्पर हुआ। लेकिन शायद हमें इस प्रयास के लिए दार्शनिक धरातल अभी खोजना होगा।

क्या है यह दार्शनिक धरातल? क्या गाँधी और हिंद स्वराज की उनकी कल्पना को उनके लेखन की घड़ी से अलग किया जा सकता है? यही सवाल *हिंद स्वराज* की हमारी पठन प्रक्रिया और मानसिकता का निर्माण करता है। बीसवीं सदी का प्रथम दशक! इस दशक में हिंद स्वराज की नींव में जो दर्शन है, जो विचार-बीज है, उसकी सम्भावना जीवित थी। परम्परा और आधुनिकता के बीच

कोई ऐसी सशक्त, ऊबड़-खाबड़ ही सही, फिर भी वास्तविक भूमि थी जो न रूढ़ि परायणता और न ही अंधाधुंध बेलगाम आधुनिकता थी। आख़िरकार हम इस भूमि को क्या नाम दें? (नाम देना, संज्ञा देना ज़रूरी हो गया है, क्योंकि हम तो अनामिका का अस्तित्व ही नहीं मानते। हमारा राजकारण, हमारा समाजकारण, हमारी ज्ञान-प्रणाली वर्गीकरण और नामकरण पर टिकी हुई है। हर समुदाय, हर विचार अपनी अलग पहचान बनाने की चाह में है। इस कारण जिसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता, ऐसी आधुनिकता से भी हमें परहेज़ है।) उस भूमि को बिन-आधुनिक, प्रति-आधुनिक या ग़ैर-आधुनिक कहना जायज़ नहीं होगा, क्योंकि इन तीनों शब्दों में प्रमुख भाव आधुनिकता का है। इनकी अर्थ-छाया आधुनिकता से, उसके विरोध से या आधुनिकता न होने से बनती है। लेकिन *हिंद स्वराज* का धरातल आधुनिकता के प्रतिरोध और प्रतिकार से नहीं रचा गया था। उसमें जो सोच पनपा, उसका आधुनिकता से कोई द्वेष नहीं था।

गाँधी आने वाली आधुनिकता से पहले के क्षण में *हिंद स्वराज* का ढाँचा बनाते हैं। यह एक ऐसा पल है जहाँ समाज और व्यक्ति ने दहलीज पार नहीं की थी। यदि केवल परम्परागत या रूढ़ि परायण समाज की चर्चा होती तो भला *हिंद स्वराज* की ज़रूरत ही क्या थी?

यह एक ऐसी घड़ी थी जो आधुनिकता की पूर्वज तो नहीं थी, लेकिन यह परिपक्व आधुनिकता के पहले का पल था। एक ऐसा पल जिसे हम कुछ भूली-बिसरी भाषा में गोधूलि पल कहते हैं। गुजराती भाषा में एक अन्य सुंदर शब्द-चित्र है 'झालर टाणु'; अर्थात वह घड़ी जब सायंकाल मंदिर में प्रार्थना की घंटी और ढोल बज रहा हो, और इसी वक़्त किसी दिन अनायास गोधूलि छा जाए तो। अब तो मानो गोधूलि और झालर दोनों आधुनिकता की रेल में बह गये हैं। पौराणिक समाज और आने वाली, लगभग दहलीज पर आ पहुँची, आधुनिकता के बीच के कुछ क्षणों में ही हिंद स्वराज की रचना सम्भव थी। गाँधी हिंद स्वराज में बहुत सीमित लेकिन फलद्रुप यानी उर्वर भूमि का निर्देश देते हैं। 'जहाँ-जहाँ यह चंडाल सुधार नहीं पहुँचा, वहाँ-वहाँ आज भी वैसा हिंदुस्तान है। उनसे आप अपने नवीन ढोंग की बात करेंगे तो वे आपकी हँसी उड़ाएँगे।'[1] गाँधी का मानना था कि सन् 1909 में पूरा हिंदुस्तान और उसकी प्रजा आधुनिकता की गिरफ़्त से बाहर थे। इसी कारण हिंद स्वराज में, जहाँ रेल की बाढ़ न पहुँची हो, ऐसे हिंद का खाका खींचना सम्भव था। *हिंद स्वराज* हिंद और उसकी प्रजा की ओर ध्यान आकर्षित करता है। वह हिंद और उसकी प्रजा केवल काल्पनिक नहीं थी, बल्कि वास्तविक थी।

वे आने वाली आधुनिकता से पहले के क्षण में *हिंद स्वराज* का ढाँचा बनाते हैं। यह एक ऐसा पल है जहाँ समाज और व्यक्ति ने दहलीज पार नहीं की थी। यदि केवल परम्परागत या रूढ़ि परायण समाज की चर्चा होती तो भला *हिंद स्वराज* की ज़रूरत ही क्या थी? न अंग्रेज़ होते, न होता उनका सुधार और न होता उनका आधुनिक ज्ञान। हिंद स्वराज ऐसे समाज की विडम्बना का खाका खींचता है, जिसका एक पैर हवा में है, तो दूसरा पैर आधुनिकता-पूर्व के परम्परागत समाज, सुधार और उत्पादन की व्यवस्था में मज़बूती से जमा हुआ है।

इस कारण *हिंद स्वराज* के पठन में, उसकी टिप्पणी में आधुनिकताए पूर्व की उस गोधूलि वेला का अगाध महत्त्व है। तथ्य के विपरीत जाकर, कुछ क्षण के लिए ही, यह मान लें कि *हिंद स्वराज* 1909 में नहीं बल्कि बीसवीं सदी के मध्य में लिखा गया। एक ऐसा समय जब आधुनिकता का

---

[1] मोहन दास कर्मचंद गाँधी (2010), *हिंद स्वराज,* मूल गुजराती पाठ का अनुवाद सुरेश शर्मा और त्रिदीप सुहृद, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नयी दिल्ली : 48, आगे से *हिंद स्वराज* के सभी संदर्भ इसी पुस्तक से।

सूरज अपनी पूरी आभा के साथ आसमान में चमक रहा हो, उस पर कोई प्रश्न न हो, कोई कालिमा न हो। इस समय लिखे जाने वाले *हिंद स्वराज* का दर्शन बिल्कुल भिन्न होता। उस समय पूरी तरह से आधुनिकता में रचे-बसे, उसी में पनपे और उसमें डूबे हुए समाज से इतर किसी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती थी। उसमें बीते हुए पलों के लिए ममत्व होता, मात्र लगाव। जो हाथ का स्पर्श करके बह गया, उस जीवन के प्रति आकर्षण होता। आधुनिकता के पूर्व का समाज जीवन और मानुस वास्तविक और सदेह न होते, जैसे इतिहास सदेह होता है। लेकिन इतिहास को सदेह करने के लिए इतिहास-लेखक और पाठक, दोनों का इतिहास में दबी-छिपी सम्भावना के प्रति जाग्रत होना आवश्यक है। इतिहास की सम्भावना स्वयं स्पष्ट नहीं होती। उसे प्रकाश में लाना ज़रूरी होता है। इस प्रकार बीसवीं सदी के मध्य में लिखा गया *हिंद स्वराज* शायद बीते हुए समय की सम्भावनाओं के प्रति केवल निर्देश कर पाता। परंतु अतीत की सम्भावनाओं को सदेह प्रस्तुत करना *हिंद स्वराज* और उसके लेखक, दोनों के लिए दुष्कर होता। ऐसे आलाप को गुजराती में पूर्वालाप कहते हैं, एक ऐसा गान जो बीते हुए पल की याद दिला सके पर जो हमारा भविष्य बनाने का यत्न न कर पाए।

II

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पश्चिम में पनपे, पर उस सभ्यता के हाशिये पर रहे कुछ विचार, *हिंद स्वराज* को समझने के लिए आवश्यक हैं। थियोसॉफी, हेनरी सोल्ट की वेज़िटेरियन सोसायटी (शाकाहारी मंडल), आना किंग्सफोर्ड का ख़िस्त दर्शन और अपने हृदय में बसे बैकुंठ की महिमा गाने वाले महात्मा टॉलस्टॉय।[2] इन सभी के विचार-प्रभाव के बिना हिंद स्वराज की कल्पना दुष्कर है। इनसे अदृश्य *हिंद स्वराज* और गाँधी कुछ अलग ही होते। यह सब पाश्चात्य चिंतक आने वाली आधुनिकता के प्रति हमें जाग्रत करते हैं, चेतावनी देते हैं। पर इन सबका विश्वास है कि आधुनिकता भी अनियत प्रवाही अवस्था होगी, कुछ क्षण का खेल। उनके लिए आधुनिकता मानव समाज का एकमात्र भविष्य नहीं है। ये पौराणिकता या रूढ़ि के पुजारी भी नहीं हैं। उनकी सोच में आधुनिकता और रूढ़ि परायणता के बीच किसी व्यवस्था का नकार नहीं है। बल्कि आस्था है कि भावी समाज इन सारे पंचरंगी ताने-बाने से गूँथा जाएगा। इसके साथ ही, ये सब लेखक आधुनिकता की ताक़त, उसके प्रभाव, उसके सम्मोहन और उसके प्रति हमारे मुग्ध भाव से परिचित हैं।

गाँधी और *हिंद स्वराज,* दोनों ही आधुनिकता के प्रति इन विचारकों के रवैये से सहमत हैं। व्यक्ति और समाज की आंतरिक और बाह्य खोज के बीच क्या संबंध हो, उसके मापदण्ड क्या हों— इन प्रश्नों के प्रति *हिंद स्वराज* की जो सतर्कता है, उसमें इन यूरोपीय चिंतकों का योगदान है।

III

आधुनिकता का अहसास, उसकी उपस्थिति भी *हिंद स्वराज* के लिए अनिवार्य है। क्या हम आधुनिकता रहित *हिंद स्वराज* की कल्पना कर सकते हैं? यदि आधुनिकता न होती तो अंग्रेज़ी राज्य तो सम्भव था, किन्तु अंग्रेज़ी सुधार, जो कुधार हैं, के नीचे कुचलना, उसके प्रभाव में होना सम्भव न होता। आधुनिकता न रहती तो, अंग्रेज़ी सभ्यता का प्रभाव न रहता। उसका प्रतिकार न होता। उसका विकल्प क्यों खोजें? और याद करें— रेल, डॉक्टर, वकील, बाँझ, वेश्या, संसद, ये सब आधुनिक संज्ञा हैं। तकनीक, उपकरण, शरीर की नयी कल्पना, क़ानून-क़रार, समाज और समता के ख़याल से प्रेरित

[2] लियो तॉल्स्तॉय (1894/2008), *दि किंगडम ऑफ गॉड इज़ विदिन यू,* वाइल्डर पब्लिकेशंस, एलआईसी, रैडफ़ोर्ड, यूएस.

राजकारण— ये सब साथ मिल कर आधुनिकता बना रहे हैं। गाँधी और *हिंद स्वराज* इस प्रक्रिया के प्रति सावधान हैं। संस्थानवादी अर्थकारण यानी नयी तरह की खेती, गिरमिटिया मज़दूर की विश्व-बाज़ार में बिक्री और उन सभी की उद्योग के लिए अनिवार्यता— यह समीकरण *हिंद स्वराज* समझता है। संस्थानवादी व्यवस्था केवल आर्थिक और राजकीय शोषण तक सीमित नहीं है। उसके सांस्कृतिक आयाम हैं। सांस्कृतिक संघटक के सम्भव परिणाम की सशक्त, स्पष्ट पहचान केवल आधुनिकता की छाया में ही ग्रहण की जा सकती है। वही तो आधुनिक सभ्यता को 'अंतरंग अरि'[3] बनाती है।

ऐसा ही एक ख़याल है— जो *हिंद स्वराज* में बार-बार दोहराया जाता है— 'एक प्रजा होना'। गाँधी और *हिंद स्वराज* के सामने सवाल यह है कि सभी हिंदी (या हिंदुस्तानी) एक प्रजा का गठन कर सकते हैं या नहीं। एक प्रजा होने का अर्थ केवल राजनीतिक नहीं हो सकता— गाँधी के लिए तो कभी ऐसा नहीं था। *हिंद स्वराज* में इस विषय पर विचार है कि एक प्रजा के गठन के क्या आधार हो सकते हैं और उसकी नैतिक भूमि कैसी होनी चाहिए। पर यह सवाल आधुनिकता की देन— राष्ट्र की अनुपस्थिति में, अपना हक़ पाने की चाह न होने पर प्रजा के गठन के सवाल उपस्थित नहीं होते। व्यक्ति के लिए नहीं, बल्कि पूरे क़ौम के लिए आज़ादी की इच्छा की सोच और यत्न, दोनों आधुनिक हैं। और फिर याद करें हमारे पाठक, अधिपति या सम्पादक और उनके बीच वाला अख़बार। यह तो नख-शिख आधुनिक है। अख़बार और एक प्रजा होने की लगन के बीच जो घना रिश्ता है, गाँधी उसे जानते हैं। हिंद स्वराज में अधिपति अपने पहले ही उत्तर में इसे स्पष्ट करते हैं। प्रश्न तो था हिंदुस्तान में चल रही स्वराज की हवा को लेकर उत्तर में अधिपति (या सम्पादक) अख़बार की भूमिका स्पष्ट करते हुए कहते हैं— 'अख़बार का पहला काम है, लोक-भावना जानना और उसको प्रकट करना। दूसरा काम है अपेक्षित लोक-भावनाओं को पैदा करना। तीसरा काम है बेधड़क लोक-दोष को व्यक्त करना, चाहे कितनी ही अड़चनों और मुसीबतों का सामना करना पड़े।'[4]

इस प्रकार गाँधी जो एक प्रजा होने का ज़िक्र करते हैं, वह एक आधुनिक अर्थ में है, एक राजकीय समाज के अर्थ में है। गाँधी जिस प्रजा की चाह रखते हैं वह अपने नैतिक उत्तरदायित्व के प्रति जाग्रत है और अपना राजकीय हक़ पाने के लिए तत्पर है। गाँधी प्रजा की एकता और एक होने का भाव दर्शाने के लिए पौराणिक सांस्कृतिक बंधन का आधार देते हैं। 'हमारे दीर्घदर्शी पुरुषों ने सेतु-बंध रामेश्वर, जगन्नाथ और हरिद्वार की यात्रा निश्चित की।...उनकी सोच थी कि कुदरत ने हिंदुस्तान को एक मुल्क बनाया है और वह एक ही प्रजा का होना चाहिए।'[5] पौराणिक संज्ञा का आधार लेकर भी गाँधी जिस प्रजा का गठन करना चाहते हैं, वह राजकीय दृष्टि में आधुनिक प्रजा है। उसके सामने की चुनौती— संस्थानवाद की आधुनिक सभ्यता— भी आधुनिक है।

IV

हिंद स्वराज की राजनीति— गुजराती में इसके लिए राजकारण प्रयोग है, जो शायद अधिक उचित है, क्योंकि यह नीति मूलक खेल नहीं है बल्कि उपकारात्मक अंग है— और समाजकारण दोनों पर आधुनिकता की गहरी छाया है।

एक उदाहरण पर विचार करते हैं। राजकारण में साम्प्रदायिकता के अर्थ में धर्म का प्रवेश एक आधुनिक घटना है। सम्प्रदाय के दायरे से राजकीय समाज की रचना का रुख बीसवीं सदी में देखा

---

[3] आशिस नंदी (1983), *द इंटिमेट एनिमी : लॉस एंड रिकवरी ऑफ़ सेल्फ अंडर कोलोनियलिज़्म, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली* से है।

[4] *हिंद स्वराज* (2010) : 7.

[5] वही (2010) : 35.

गया। यह मध्यकालीन धर्म और राज्यसत्ता के संबंध से अलग है। सम्प्रदाय के आस-पास, उसी धुरी से क़ौम की रचना होना या धर्ममूलक रिवाज़ होना साम्प्रदायिक राजकारण से बिल्कुल अलग रचना है। धर्म में आस्था होना और आस्था-रहित धर्म को राजकीय हथियार बनाना अलग है। साम्प्रदायिक अलगाव या वैमनस्य केवल धार्मिक अंतर से नहीं है। धार्मिक या सांस्कृतिक अंतर का उपयोग केवल या प्रमुखतः राजकीय हेतु से करने के आधुनिक प्रयास को साम्प्रदायिकता कहते हैं।

इसी प्रकार, राजकारण में हिंसा को दी गयी मान्यता और हिंसा का औचित्य आधुनिक है। हिंसा राजकीय या सामाजिक सत्ता के साथ हमेशा से जुड़ी है। लेकिन हिंसा का औचित्य ढूँढ़ने के हमारे प्रयास आधुनिक हैं। हम हिंसा को उचित एवं अनुचित, आवश्यक और अनावश्यक, निवार्य और अनिवार्य में बाँटते हैं। उसका वर्गीकरण करते हैं। हमारा हिंसा के प्रति रवैया इस वर्गीकरण के आधार पर होता है। राजकीय व्यवस्था के उचित, इच्छित, न्यायोचित और इष्ट साधने-बनाने वाले दर्शन के रूप में हिंसा की शुरुआत आधुनिकता से जुड़ी हुई है। कहने का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि आधुनिकता-पूर्व समाज या राज्य में हिंसा का सदैव अभाव था। लेकिन राजकारण में हिंसा के स्थान को लेकर जो दर्शन बना, उसकी सैद्धांतिक चर्चा हुई— किस प्रकार की हिंसा, किस मात्रा में, किस प्रकार से उचित या अनुचित है— यह सब आधुनिक शास्त्र है।

आधुनिक हिंसा में स्वयं हिंसा ही अपना औचित्य, आधार एवं प्रमाण है। वह स्वयंसिद्ध है। चूँकि आधुनिक राजकीय विचार साधन, साधक और साध्य के बीच के अंतर को स्वीकार करती है, इसलिए इस अंतर के कारण हिंसा उपकरण बनती है। यह दारू-गोला ऐसा है कि कोई भी मानुस इसका शिकार बन सकता है। जब किसी व्यक्ति विशेष की हत्या होती है, तब भी प्रायः वह एक संज्ञा-स्वरूप होती है। व्यक्ति, व्यक्ति न रहकर संज्ञा मात्र बनता है। इस प्रकार की हिंसा में हिंसा करने वाले, और हिंसा की होली में जिसकी आहुति दी जाती है, दोनों के बीच एक अंतर होता है, एक दूरी होती है। इस अंतर का दार्शनिक महत्त्व है क्योंकि यह दूरी हिंसक कृत्य, हिंसा, हिंसा करने वाले व्यक्ति, हिंसा के शिकार मानुस में अंतर करती है। इसे निजी राग-द्वेष से परे ले जाती है। मान लो एक प्रकार की निर्मल हिंसा है। ऐसी निर्मल, निजी राग-द्वेष से परे हिंसा निर्मम भी होती है, क्योंकि इसमें संवेदन नहीं होता, केवल तर्क ही होता है। और तर्क होने के कारण हिंसा का सामाजिक आयाम बनता है। व्यक्ति से परे उठ कर समष्टि को अपने-आप में समा लेती है। हिंसा का यह शुद्ध, निर्मल, निर्मम और स्वयंसिद्ध प्रकार ही *हिंद स्वराज* में गाँधी को बेचैन करने वाली आधुनिक हिंसा है।

V

आधुनिकता परम्परागत समाज के साथ नाता तोड़ती है तो तंतु-विच्छेद होता है। नहीं, इसे केवल तंतु-विच्छेद कहना उचित नहीं होगा। यह ऐसा विच्छेद नहीं है जिसमें ताने-बाने को फिर जोड़कर वही पुरानी बुनावट तैयार की जा सके। यह विच्छेद तो एक खाई है। आधुनिकता से परम्परा के विच्छेद का कारण तकनीक या कल-यंत्र नहीं है। इसका कारण नयी ज्ञान-भावना भी नहीं है। आधुनिक दर्शन की नींव में व्यक्ति है— प्रथम पुरुष, एक वचन। स्व एवं परा, कुटुम्ब और युग्म; परिवार, समाज, अर्थव्यवस्था और राजकारण इस नये मानुस के इर्द-गिर्द हैं, वह उन्हें बनाता है। यह एक ऐसा मानुस है जो कि स्वराज है, अपने-आप में रमता है। अकेलेपन से विचलित भी है, फिर भी अपनेपन में मस्त। व्यक्ति को केंद्रीय स्थान देने वाले दर्शन का नाम ही आधुनिकता है।

VI

इस नये मानुस को समझने के, उसकी तुलना के, मूल्यांकन के परिमाण और परिवेश दोनों अलग हैं। इस मानुस का पुरुषार्थ और खोज दोनों व्यक्ति केंद्रित है। केवल स्वार्थ नहीं परंतु स्व-अर्थ भी। आधुनिकता के मुख्य लक्षण को याद करें।

'इस सुधार की सही पहचान तो यह है कि मानव बाहरी शोध और शरीर सुख में सार्थकता और पुरुषार्थ मानते हैं।'[6] बाहरी शोध और उसी में अर्थ एवं पुरुषार्थ का समावेश होना— गाँधी के लिए यह अद्वितीय घटना है। पहले कभी ऐसा नहीं हुआ कि मानव की स्व-व्याख्या, उसकी अपने बारे में समझ, मानव के जो इतर हैं, उससे बाहर और अलग है, ऐसी भूमि में होने लगी। यह भूमि पारलौकिक नहीं, इहलौकिक है। यह भूमि चीज़, वस्तु, पदार्थ एवं शरीर सुख से पुष्ट है।

गाँधी जिसे बाहरी शोध का निर्देश कहते हैं उस पर थोड़ा ध्यान दें। इसमें एक रिक्त स्थान को इंगित किया गया है। और यह रिक्त स्थान केवल ख़ालीपन नहीं है। यह ऐसे एक पुरुषार्थ को इंगित करता है, जो असम्भव है। यह है 'अंतर शोध'। बाहरी शोध और अंतर शोध के बीच विशाल दार्शनिक अंतर है। बाहरी शोध में मानव के अस्तित्व मात्र की पुष्टि पदार्थ द्वारा होती है— भले ही वह पदार्थ मानव निर्मित हो। इस मायने में आधुनिकता उससे पहले की तमाम सभ्यताओं से अलग दार्शनिक पीठिका का निर्माण करती है। नीति, धर्म, फ़र्ज़, गुण, दुष्टता, पुण्य एवं पाप— ये सब ख़याल मानव-केंद्रित हैं। उसकी जड़ें मानुस होने में है। यदि मानव जीवन का सार्थक्य ही बाहरी शोध हो तो पुरुषार्थ की रीति, गति और मति भी बाह्यलक्षी होती है। मानुस के जीवन का अर्थ और उसके पुरुषार्थ मानवेतर हों, अर्थ देने वाला ढाँचा और संज्ञा मानुस के बाहर हो, तब एक नये अभूतपूर्व दर्शन की नींव डाली जाती है। *हिंद स्वराज* इस सोच से व्यग्र है, ग्रस्त है, क्योंकि मानव होने का ख़याल-मात्र जब बदलता है, जब कल-यंत्र मानव गरिमा का मापदण्ड बनने लगते हैं, तो इसमें नीति और धर्म का कोई स्थान नहीं होता है, अंतिम अरण्य में भी नहीं। *हिंद स्वराज* इस नये व्यक्ति के ख़िलाफ़ बग़ावत है। बाहरी शोध पर गाँधी ने लिखा है : 'ख़ुदा ने मनुष्य की सीमा शरीर के पाट में बाँधी और मनुष्य ने उस पाट की सीमा लाँघने के उपाय खोज निकाले। मनुष्य को अक़्ल इसलिए बख़्शी कि उससे वह ख़ुदा को पहचाने, लेकिन मनुष्य ने अक़्ल का उपयोग किया ख़ुदा को भूलने के लिए।'[7]

ख़ुदा को भुलाने का अर्थ ही है कि मानव अपनी पुन: व्याख्या कर रहा है।

VII

इस नव कल्पित-रचित मानुस के लिए आत्मज्ञान की सम्भावना भी नहीं। उसकी दृष्टि, गति, चलन-वलन बाह्यलक्षी होने से, आंतर दृष्टि से, आंतर खोज से अपने आप को पाने की सम्भावना और यत्न दोनों का हनन होता है। इसको गाँधी धर्म-भ्रष्ट होना या ईश्वर से विमुख होना कहते हैं। 'धर्म मुझे प्रिय है, इसलिए प्रथम दुख तो यह है कि हिंदुस्तान धर्म-भ्रष्ट होता जा रहा है। इस संदर्भ में धर्म का अर्थ हिंदू, मुस्लिम या पारसी से नहीं, बल्कि इन सभी धर्मों में जो धर्म रहता है वह छूटता जा रहा है। ईश्वर से हम विमुख होते जा रहे हैं।'[8] गाँधी के अनुसार, धर्म-शिक्षा ही दुनियावी लोभ की सीमा बाँधने में और धार्मिक उत्साह को मुक्त छोड़ने में है। अपने आपको पहचानने और पाने का मतलब है मानुस और दैव शक्ति के बीच के अंतर को समझ जाना। यह अंतर मानव होने की मर्यादा का, सीमा का ज्ञान है।

---

[6] *हिंद स्वराज* (2010) : 23-24.

[7] वही (2010) : 36.

[8] वही (2010) : 30.

मानव होना यानी अच्छे-बुरे, पुण्य और पाप, स्वार्थ और परमार्थ के बीच की दूरी को समझ पाना और उस सोच के आधार को लंगर मान आचरण करना। इसमें यह स्वीकार भी है कि कोई व्यक्ति मानुस होने के नाते अच्छे को, सत्य को, नीति को समझने की और उसके आधार पर आचरण की सम्भावना रखता है। गाँधी की मनुष्य जाति में आस्था अटल है। इसीलिए तो कहते हैं कि 'वकील भी मनुष्य है, और मनुष्य जाति में कुछ अच्छा तो रहता ही है।'[9] यदि यह अच्छाई की सम्भावना मात्र का नकार हो तो सत्याग्रह सम्भव नहीं होता। सत्याग्रह की मूल अवधारणा ही यह है कि हर कोई व्यक्ति, विरोधी या दमनकारी राजकर्त्ता भी, सच को पाने की और उस प्रकार आचरण करने की सम्भावना रखता है। जब आंतर शोध की सम्भावना का दायरा सीमित हो और उसकी सम्भावना मात्र न रहे, तो केवल बाहरी शोध से अच्छा-बुरा, सत्य-असत्य, नीति-अनीति के सवाल का दार्शनिक धरातल सरासर बदल जाता है।

यदि हम अपने आपको न पहचान पाये तो व्यवस्था को नहीं सुधार सकते हैं। कारण, 'सुधार ऐसे आचरण को कहते हैं, जिसमें मानुस अपना फ़र्ज़ निभाए। फ़र्ज़ निभाने का अर्थ है नीति पालन। नीति पालन का अर्थ है अपने मन-इंद्रियों को वश में रखना। और ऐसा करते हुए हम स्वयं को पहचानते हों, यही 'सु' यानी सच्ची धारा है। इसके जो विपरीत है, वह कुधार।'[10]

'धर्म मुझे प्रिय है, इसलिए प्रथम दुख तो यह है कि हिंदुस्तान धर्म-भ्रष्ट होता जा रहा है। इस संदर्भ में धर्म का अर्थ हिंदू, मुस्लिम या पारसी से नहीं, बल्कि इन सभी धर्मों में जो धर्म रहता है वह छूटता जा रहा है। ईश्वर से हम विमुख होते जा रहे हैं।'

गाँधी के लिए सुधार व्यवस्था नहीं आचरण है। व्यवस्था व्यक्ति से परे है। उसका अस्तित्व भी व्यक्ति से स्वतंत्र है, किंतु व्यक्ति का फ़र्ज़ है कि वह आचरण करे। किंतु व्यक्ति और समष्टि में, व्यक्ति और समाज में एक नाता है, पारस्पर्य है। यदि समाज की गति-रीति, समष्टि की व्यवस्था व्यक्तिगत दायरे के आचरण को सीमित करती हो, तो वह सुधार नहीं हो सकता। आधुनिक सुधार इस सम्भावना को सीमित करता है। इस प्रकार, गाँधी का आधुनिक सभ्यता के प्रति विद्रोह केवल वकील, डॉक्टर, रेल या कल-यंत्र के कारण नहीं है। यह बग़ावत दार्शनिक है। आधुनिक सुधार— जिसे वे कुधार कहते हैं— सभ्यता से विपरीत हैं, क्योंकि इस सुधार-कुधार का मुख्य लक्ष्य बाहर की शोध है। इसमें अर्थ और पुरुषार्थ है। यह व्यवस्था ऐसे आचरण का दायरा सीमित करती है जिसमें नीति पालन से, मन इंद्रियों को वश में रख हम स्वयं को पहचान पाएँ।

स्वयं को पहचाने बग़ैर मोक्ष, ईश्वर-दर्शन, ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा और सम्भावना लुप्त हो जाती है। इसके साथ ही लुप्त होता है स्वराज। 'अपने ऊपर हम स्वयं राज्य करें, वही स्वराज है।'[11] स्वयं पर राज्य करने का एक अर्थ है अपनी हुकूमत है, तो उतना ही मनभावक अर्थ स्वयं पर नियंत्रण होना है। स्वयं पर राज्य करने के लिए मन-इंद्रियों को वश में करना पड़ता है। यही है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य को इंद्रिय दमन के संकुचित अर्थ में न लें। सत्य-ब्रह्म के निकट ले जाए, ऐसी चर्चा, ऐसा आचरण, यही है ब्रह्मचर्य। इसी ब्रह्मचर्य द्वारा हम स्वयं को पहचानते हैं। इस प्रकार सुधार का अर्थ ब्रह्मचर्य भी हुआ। इसी व्यापक और सर्वग्राही अर्थ में गाँधी ब्रह्मचर्य शब्द का प्रयोग करते हैं, इसी अर्थ को पाने के लिए वे तत्पर थे। जो आचरण सत्य के क़रीब ले जाए, जिससे हम स्वयं को पहचानें, उसी आचरण से हम स्वराज पाएँ और मोक्षार्थी बनें।

---

[9] *हिंद स्वराज* (2010) : 41.

[10] वही (2010) : 47.

[11] वही (2010) : 51.

इसी कारण गाँधी आधुनिक सुधार को कलियुग या शैतानी राज्य कहते हैं। शैतान होना यानी स्वयं एवं ईश्वर दोनों का नकार। एक बार नहीं परंतु, ईशु वचन के अनुसार सुबह की सूरज की पहली किरण के पहले, मुर्गी की बाँग सुनाई दे उससे पहले, तीन-तीन बार।

VIII

किन्तु ब्रह्मचर्य, मोक्ष-इच्छा और स्वयं पर राज्य करने वाले स्वराज की प्राप्ति प्रथम व्यक्तिमूलक है और उसके बाद समष्टि के लिए। गाँधी इस व्यक्तिगत स्वराज से परहेज़ नहीं रखते। वे तो साफ़ कहते हैं कि 'यदि हम स्वयं ग़ुलामी से मुक्त हो जाएँ, तो समझो हिंदुस्तान की ग़ुलामी गयी।... डूबता दूसरे को नहीं बचा सकता, लेकिन तैराक दूसरे को पार लगा सकता है। हम स्वयं ग़ुलाम हों और दूसरों को मुक्त कराने की बात करें, इससे बात नहीं बनती।'[12]

यदि हम इस विचार को थोड़ी सी भी मान्यता दें तो स्पष्ट है कि गाँधी के *हिंद स्वराज* में आधुनिकता से मूलतः विच्छेद नहीं है, क्योंकि स्वायत्त वैयक्तिकता तो आधुनिकता की देन है। हमें *हिंद स्वराज* के इस असमंजस से, उसकी आधुनिकता से परहेज़ नहीं करना चाहिए।

गाँधी का मानुस स्वयंविहारी, स्वच्छंद व्यक्ति नहीं बनता, क्योंकि उसमें फ़र्ज़ पालन और नीति परायणता, दोनों है। नीति और फ़र्ज़— दोनों सामाजिकता इंगित करते हैं। नीति निजी है लेकिन वह अन्य के साथ व्यवहार में, उसके द्वारा बनती है। यदि इस समाज के दायरे से परे अकेले मनुष्य की कल्पना करें तो उसे फ़र्ज़ या नीति की आवश्यकता नहीं होती है। वह 'स्व-भाव' आचरण करता है। वह निजानंद में है, पर नीतिपरायण नहीं है। इसी तरह, यदि हम पूर्णतः आधुनिक व्यक्ति की कल्पना करें— ऐसा मानुस जिसकी खोज बाहर की और शरीर सुख तक सीमित है— तो उसके लिए नीति परायणता या फ़र्ज़ पालन आवश्यक नहीं है। गाँधी तो शायद कहेंगे कि उसके लिए सम्भव भी नहीं है। गाँधी की चाह सामाजिक मानुस की है— व्यक्ति और समष्टि— दोनों को अपने बाहुपाश में लेकर चलने वाले व्यक्ति की खोज है।

IX

गाँधी के ब्रह्मचारी, मोक्षार्थी, स्वयं की पहचान, स्वराज की धूनी रमाने वाले मानुस को समष्टि के साथ उसके स्वधर्म को युगधर्म के साथ जोड़ती कड़ी है— सत्याग्रह और सत्याग्रही। *हिंद स्वराज* में सत्याग्रह का ज़िक्र तो है। साधन और साध्य को जोड़ने वाला, उसका पारस्पर्य रचने वाला साधन अध्याहार है। इस साधक की अनुपस्थिति में न तो सत्याग्रह सम्भव है, न तो स्वराज। साधन शुद्ध होने का तात्पर्य साधन की निर्मिति प्रक्रिया है और इस्तेमाल करने वाले साधक की शुद्धि है। साध्य नैतिक हो, साधन शुद्ध, निर्मल हो पर यदि उसे इस्तेमाल करने वाला व्यक्ति यदि नैतिक और निर्मल नहीं हो तो परिणाम न तो इच्छाजनित होगा, न ही इच्छित। साधक की साधना ही साधन के चयन में निर्णायक होती है। शुद्ध साधन और उच्च, निःस्वार्थ साध्य पाने के लिए साधक अधिकारी होना चाहिए। गाँधी के एकादश व्रत साधक की शुद्धि के लिए उसकी साधना के लिए हैं। आश्रम साधक की भट्ठी है, जिसकी पावक आग में तप कर साधक शुद्ध होता है।

हिंद स्वराज का अध्यात्म-दर्शन स्वयं को पहचानने की चाह, साधन शुद्धि एवं साधक की साधना से उभरती है। साधक की साधना उसे स्वयं को पहचानने के लिए, अंतरात्मा की आवाज़ सुनने के क़ाबिल करती है। साधक की साधना न होने पर सत्याग्रह असम्भव है।

---

[12] *हिंद स्वराज* (2010) : 50-51.

X

हिंद स्वराज का खाका आधुनिकता के साये में खिंचता है।

कल-यंत्र, रेल, डॉक्टर, वकील, हिंसा, बाहर की शोध में अर्थ और उसका पुरुषार्थ और इन सबका साँझा शैतानी राज्य आधुनिक है। गाँधी का मानुस, उसका ब्रह्मचर्य, उसकी मोक्ष आकांक्षा और उससे प्राप्त ज्ञान वाला स्वराज आधुनिकता से बिल्कुल रंजित नहीं है— क्या ऐसा स्वस्थ चित्त का दावा कर सकते हैं हम?

XI

इसका जवाब हमारे हिंद स्वराज के पठन पर आधारित है।

(अ) यदि हम *हिंद स्वराज* के कल-यंत्र, डॉक्टर, वकील, रेल पर ध्यान दें तो यह पाठ आधुनिकता के ख़िलाफ़ विद्रोह लग सकता है।

> *हिंद स्वराज* मूलतः नीतिपरायण होकर, मन-इंद्रियों को वश में ला कर, स्वयं को पहचान कर, साधन, साधक और साध्य की शुद्धि और अनिवार्य जोड़ के सहारे अपने ऊपर राज्य कर स्वराज पाने की सीख देता है।

इस चुनौती को हम दो तरह से देख सकते हैं। यदि हम आधुनिकता से व्यग्र हैं, विचलित हैं, तो यह पाठ हमें आधुनिकता के साथ मुठभेड़ में सहायता करेगा। परंतु हमारे लिए आधुनिकता के दायरे से पूरी तरह बाहर जाने की सम्भावना तो है नहीं। इस कारण यह सहायता मूलतः बौद्धिक या आध्यात्मिक होगी। हमें इतना तो क़ुबूल करना होगा कि आधुनिकता के साथ जद्दोजहद करते हुए हमारी साँस फूल आये, बेचैनी हो, फिर भी सामूहिक स्तर पर हमारे लिए आधुनिकता के पूर्व का समाज— *हिंद स्वराज* और गाँधी गोधूलि क्षण— सजीव वास्तविकता नहीं है।

यह होते हुए भी *हिंद स्वराज* हमें आंतर खोज का औचित्य समझाएगा, स्वयं को पहचान, सत्य के क़रीब जा, मन, इंद्रियों को वश में कर, स्वराज की प्यास या मोक्ष की तृष्णा बरक़रार रखेगा। *हिंद स्वराज,* आधुनिकता के मध्याह्न में भी राजकीय कृत्य और आध्यात्मिक शोध का सामंजस्य और पारस्पर्य बरक़रार रखेगा, शायद व्यक्ति के लिए, समष्टि के लिए नहीं।

लेकिन, हम आधुनिकता के हिमायती हों, उसके वकील हों, या परम्परा से ग्रस्त, उसमें दबे, बँधे हुए आधुनिकता में पहली बार खुली साँस का अनुभव कर रहे हों, तो *हिंद स्वराज* और उसका गाँधी दोनों हमें गैर-आधुनिक लगेंगे। और कोई ग़ैर-आधुनिक को रूढ़िवादी या परम्परा परायण ही कहेगा। न भी कहे तो भी *हिंद स्वराज* को सम्प्रति ग्रंथ तो नहीं ही मानेगा। सावरकर से लेकर नेहरू तक— कइयों ने *हिंद स्वराज* को इस तरह पढ़ा और नकारा। इस पठन में *हिंद स्वराज* को आज समय के लिए उपयुक्त ग्रंथ नहीं माना जाता। बल्कि यह हमें हमारे समाज और अर्थव्यवस्था की कोई भूली-बिसरी और भूलने लायक और अतीत में ले जाने वाली चेष्टा लगती है।

यदि हम *हिंद स्वराज* को इस नज़रिये से पढ़ें तो आचार-विचार के बीच अंतर की बात लेकर गाँधी के कान खींचेंगे। रेल में यदि 'फ्रीक्वेंट फ्लायर मायल्स' मिलें, जिससे सात जनम तक प्रथम दर्जा वातानुकूलित कुर्सीयान की मुफ़्त सवारी मिलती रहे— तो इतने रेल प्रवास उपरांत भी गाँधी इसे कोसते हैं। वकालत न भायी और शायद समझ में न आयी, इसलिए वकील को भला-बुरा कहा, डॉक्टर तो उनके साथ ही रहते थे फिर भी अस्पताल को पाप का मूल कहा। और भी ऐसा बहुत कुछ। आधुनिकता के दायरे से *हिंद स्वराज* पर कुछ ऐसे ही प्रहार होते हैं।

(ब) *हिंद स्वराज* का उसका परिवेश से, उसकी आबो-हवा, उसके आफ़ताब से बिल्कुल अलग कर पठन भी होता है। प्रयास *हिंद स्वराज* को अपने समय में खींच कर लाने का होता

है। आधुनिकता की बाढ़ थमने के बाद अनु-आधुनिक युग में गाँधी को साथ ले लें तो पर्यावरण, उपभोक्तावाद, क्षीण लोकशाही और सांस्कृतिक आंतर विग्रह के जवाब हम *हिंद स्वराज* में ढूँढेंगे। और फिर मुख पृष्ठ पर 'पोस्ट मॉडर्न गाँधी' छपा हो ऐसी पुस्तक पढ़ेंगे और लिखेंगे भी। हमें शायद स्मृति-भंग होना है— या शायद ऐसा पसंद करते हैं— कि गाँधी के आधुनिकता-पूर्व दर्शन में और दर्शनरहित अनु-आधुनिक ज्ञान में अंतर बड़ा है। एक सदी से ज्यादा का अंतर, दूसरे विश्व युद्ध और न्यूरेमबर्ग की अदालत का अंतर, संचार माध्यम की सांस्कृतिक वास्तविकता का अंतर। लेकिन सबसे बड़ा अंतर है अर्थ, पुरुषार्थ, स्वयं को पहचानने की चाह और इन सबके ज्ञान और भाषा का अंतर।

हिंद स्वराज मूलतः नीति परायण होकर, मन-इंद्रियों को वश में लाकर, स्वयं को पहचान कर, साधन, साधक और साध्य की शुद्धि और अनिवार्य जोड़ के सहारे अपने ऊपर राज्य कर, स्वराज पाने की सीख देता है। यह सब व्यक्ति और समष्टि दोनों के लिए सम्भव होना चाहिए। यदि अर्थव्यवस्था, समाज व्यवस्था, राजकारण और सभ्यता इसके लिए सम्भावना सामाजिक स्तर पर बरक़रार नहीं रखती है, तो फिर *हिंद स्वराज* के दर्शन को हमारे समय में खींच लाना दुष्कर होता है।

XII

तो फिर *हिंद स्वराज* का पाठ कैसे हो? मूल पाठ स्वरूप? नाम स्मरण भाँति? पूर्वालाप की भाँति या प्रकाशदीप की तरह?

इस वक़्त फिलडोनन कॉसल में हिचकोले खाते, 40 वर्षीय, 'जब मुझसे नहीं रहा गया, तब मैंने लिखा' कहने वाले, दायें और बायें हाथ से सव्यसाची बनकर लिखते, विलायत से दक्षिण अफ्रीका की मुसाफ़िरी कर रहे, सूट-बूट में सजे गाँधी भाई को याद करना उचित होगा।

फिलडोनन कॉसल की यह यात्रा दो किनारों के बीच की यात्रा है। भौगोलिक दृष्टि से तो विलायत और दक्षिण अफ्रीका के बीच प्रवास। और तरह से देखें तो आधुनिकता में स्वस्थ क़दम दे रहे ब्रिटेन और आधुनिकता की अनिवार्य उपज ऐसे संस्थान के बीच दूरी। यह यात्री भी कुछ ऐसा ही है। वह केवल यात्री नहीं है। पहला गिरमिट है वह। अर्वाचीनता की अंध दौड़ में एक समय शामिल था। वह केवल आधुनिकता की दहलीज पर नहीं रुका। वह तो आधुनिकता के मंदिर 'टेम्पल इन्स' का विद्यार्थी रह चुका है। अब इसे नयी दिशा की खोज है। दिशा अभी कुछ धुँधली सी है, यह पथ ज्योतिर्मय नहीं है।

'फिलडोनन कॉसल' की ओर उसके प्रवासी की यह प्रवाही अवस्था, दिशा-किनारे की खोज, यह *हिंद स्वराज* की भी अवस्था है। *हिंद स्वराज* इस प्रवाही अवस्था, इस गोधूलि क्षण का दर्शन है।

तो क्या यह क्षणभंगुर है? क्योंकि प्रवाही अवस्था तो अनिर्णायक होती है। यात्री और जहाज़ दोनों को किनारे की चाह है। और शाम ढलते ही गोधूलि में असल होती है। *हिंद स्वराज* का आधुनिकता-पूर्व की सभ्यता की सम्भावना का दर्शन देने वाले, आधुनिकता के साये में लिखे, नये आध्यात्मिक और नवीन राजकारण का न्यौता देने वाले दर्शन के रूप में पाठ करें। उसकी आबोहवा समझें, विचार आत्मसात करें ओर सम्भव हो तो समर्पित भी करें।

हिंद स्वराज में अस्ताचल की ओर बढ़ रही, सीमित बन रही सम्भावनाओं का दर्शन है। इसकी प्रवाहमयता हमें व्यग्र करती है और इसी कारण बार-बार उससे जूझने का न्योता देती है। ऐसे में हमें *हिंद स्वराज* के इस प्रवाही, डगमगाते, कभी अपरिपक्व, अस्ताचल तरफ प्रयाण करने वाले किंतु अलबेले, लावण्यमय गान का आनंद लेना है— उनकी धूनी रमानी है।